ISSN -PRINT-2231-3613ONLINE2455-8729
International Educational Journal
UGC APPROVAL NO. - 42652
CHETANA

Received on 2ndApril 2018, Revised on 4th April 2018; Accepted 5thApril 2018

आलेख

जैन योग में ध्यान के प्रकार

* राहुल कुमार एवं रामवतार मीणा
अध्यापक, एम.ए. (योग) छात्र एवं वरिष्ट प्रारूपकार, नगर नियोजन विभाग,जयपुर एम.ए.(योग) छात्र
Emil id: indianrahulkumar@gmail.com, Mob.No. 9929766016

Key words: *जैन, ध्यान, आर्तध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, रौद्र ध्यान, कण्ठस्थ, सकारात्मक, उत्पादक एवं निमार्ण आदि।*

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जैन योग में ध्यान के प्रकारों पर प्रकाश डालना है। इस शोध पत्र में जैन ध्यान पद्धित के प्रकारों का सुदीर्घ विवेचन किया गया है। जैन शब्द की व्याख्या करते हुए ध्यान के प्रकारों का विस्तार किया गया है।

सम्प्रत्यात्मक पृष्टभूमि

पृथ्वी पर उपस्थित जड़चेतन मे से मनुष्य ही एकमात्र वह प्राणी है, जो चेतना के सर्वोत्कृष्ट स्तर तक पहुचने की संभावना (क्षमता) रखता है। विश्व के प्रत्येक धर्म का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की कामना है।

मूल तत्व – द्रश्टाओं ने अपनी आत्मा के अंतर–मंथन के फलस्वरूप जो नवनीत प्राप्त किया धर्म उसी की अभिव्यक्ति है। उसी के निरूपण से विभिन्न दर्शनो की उत्पत्ति हुई है। धर्म संस्कृत के 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ धारण किया जा सकें।

धर्म वह है जो धारण किया जा सके। धर्म एक जीवन है जिसमे विविध क्रियाओ – प्रतिक्रियो का सम्मुच्चयन है।

दर्शन का एक अर्थ दृष्टि होता है। वस्तुतः इसी दृष्टि की प्रधानता जैन धर्म और दर्शन का मूलआधार है। जैन परम्परा मे माना गया है कि कोई भी आत्मा – परमात्मा बन सकता है इस हेतु जैन धर्म मे साधना, तप आदि को प्रमुखता दी गई है।

जैन शब्द का उद्भव 'जिन' से हुआ है जिसमे जी धातु है जिसका अर्थ जीतना होता है। जैन धर्म में इन्द्रियों के जीतने की तकनीक का वर्णन है। अर्थात जो इन्द्रियो को जीतता है, 'जिन' है।

जैन दर्शन में ध्यान के प्रकारः

ध्यानः

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

चित्त का एक आलंबन पर लंबे समय तक टिकना ध्यान है। चित्त को किसी देश विशेष में बाँधना धारण है। देश का तात्पर्य स्थान विशेष है। इस प्रकार जिस स्थान पर अथवा जिस विषय पर चित्त को स्थिर किया जाए, वह देश धारणा के

लिए दो स्थान निश्चित किए गए है – आम्यंतर एंव बाह्य ध्यये विषय कोई भी हो सकता है जैसे नाभि, ह्रद्य कमल नासिका का अग्रभाग सहस्त्रार चक्र आदि अथवा चंद्रमा मूर्ति आदि बाह्य देश रूप विषय भी हो सकते है। इन्ही में ध्यान का अभ्यास करना ।

बंध का अर्थ है बाँधना, स्थिर करना, एकाग्र करना अतः चित्त को अन्य विषयों से हटकार एक विषय में वृत्तिमात्र से स्थिर करना बंध है।

धारणा का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम में तो ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि तो द्वितीय में किसी पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए। इस प्रकार साधक अपने लक्ष्य के अनुरूप अपनी ध्येय वस्तु, का चुनाव करता है।

ध्यान के प्रकारः

जैन परम्परा मे ध्यान को प्रशस्त और अप्रशस्त दो भागों में बाँटा गया है। अप्रशस्त ध्यान राग और द्वेष जनित होने के कारण बंध युक्त है तो प्रशस्त ध्यान कषाय भाव से मुक्त होने के कारण मुक्ति का हेतु है। जैन परम्परा में मुख्य चार प्रकार के ध्यान के प्रकारों का वर्णन किया गया है। जिनमें प्रथम दो अप्रशस्त और पश्चात् के दो प्रशस्त है।

अतः 4 ध्यान निम्न है –

आर्तध्यानः – ऋते भवम् आर्तम् – इस निरूक्ति के अनुसार ऋृत अर्थात दु–ख के निमित से होने वाला अध्यव आर्त ध्यान है। इस ध्यान में हिंसा आदि क्रुर चिंतन बना रहता है। जीव अपने शुभ अशुभ कर्मो के उदय के कारण शुभ अशुभ फल भोगता है। यही स्थिति आर्त ध्यान की भी है। आर्त ध्यानी सुखभोग मे अत्यन्त आसक्त रहता है। दुसरो के पास अधिक वस्तुएँ देखकर, सुनकर भी उस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा बनी रहती है। यह भोग की इच्छावृत्ति जीवन भर चलती रहती है लेकिन तृप्ति नहीं होती है। ऐसा व्यक्ति वास्तव में सुखी नहीं रह सकता है, शाँत नहीं रह सकता है और कषायों के बंधन में पड़ता जाता है अतः ध्यान मुक्ति नही वरन बंधन का कारण है इसलिए यह अप्रशस्त था अशुभ ध्यान के अन्तर्गत आता है। आर्त ध्यान स्वयं भी 4 प्रकार का होता है –

1. अमनोज्ञ अनिष्ट संयोग – ,

इस ध्यान में अमनोज्ञ अनिष्ठ विषयों का संयोग होता है। कुछ हमें अच्छे (इष्ट) नहीं लगते हैं और इनसे हम छुटकारा पाना चाहते है। प्रत्येक प्राणी अनिष्ट को दूर करना चाहता है लेकिन जब तक संयोग होगा तब तक न चाहते हुऐ भी उनसे छुटकारा नहीं पा सकते हैं। जब अनिष्ट विषयों का संयोग होगा तब तक न चाहते हुऐ भी उनसे छुटकारा नहीं पा सकते है। जब अनिष्ट विषयों का संयोग होता है, मन इससे खिन्न रहता है, दुःखी रहता है। उनके वियोग का विचार भी बना रहता है, अर्थात मन को न भाने वाले जो अनिष्ट विषय है उनसे मुक्ति की भावना बने रहना अमनोज्ञ संयोग ध्यान के अन्तर्गत आता है।

2. मनोज्ञ इष्ट संयोग –

मनोज्ञ इष्ट संयोग वह है जिससे मन को अच्छे लगने वाले विषय का संयोग होता है । इस अवस्था में मन ऐसे विषयों का कदापि वियोग नही चाहता है, अर्थात उस सुखानुभुति का वह वियोग नही चाहता है । अतः इष्ट विषयों का वियोग न हो, इस प्रकार के विचारों से मन विचलित रहना मनोज्ञ इष्ट संयोग के अन्तर्गत आता है । आसक्त प्राणी सदैव अभीष्ट विषयों का इच्छित विषयों का ही संयोग चाहता है । यदि वर्तमान में वह सुख प्राप्त नही है तो भविष्य में उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है – ऐसी इच्छा बनी रहती है यह इसका लक्षण है।

3. आतंक आर्त ध्यान –

किसी प्रतिकूल परिस्थिति या रोग के उपस्थित होने पर भयप्रद या उसके प्रतिकार के लिए मन का व्याकुल होना या उसके विषय हेतु निरंतर चिंतन करना आतंक आर्त ध्यान है।

4. भोगेच्छा आर्तध्यान –

भोग की इच्छा रखना ही भोगेच्छा आर्त ध्यान है अथवा पांच इंद्रियों संबंधी भोग काम की इच्छा रखना या इच्छा का होना भोगेच्छा आर्तध्यान के अन्तर्गत ही आता है । पांचो इन्द्रियो के अपने–अपने विषय व रस है इन रसों का स्वाद लेने या इनका आनन्द लेने की इच्छा करना, ऐसे विचारों में निमग्न रह कर भोग की इच्छा भोगेच्छा आर्तध्यान है ।

आर्तध्यान के लक्षण –

क्रंदन करना – इस ध्यान में व्यक्ति रोता है, चिल्लाता है जिसका कारण इष्ट का वियोग और अनिष्ट का संयोग है ।

सोचना – इस ध्यान में चिंता व कुंठा के कारण सोचना, विचारना, उदासीन होना, ऐसा असामान्य व्यवहार करना आदि लक्षण होते है । जिसमें अधिक सोचना शामील।

आंसू बहाना – जब अनिष्ट के भय, इष्ट का वियोग या उसे पाने हेतु दुःखी व्यक्ति आंसू बहाता है ।

4. विलाप – छाती पीटना, भयंकर शब्दों का प्रयोग, झुठ व जोर–जोर से रोना

रौद्र ध्यानः–

रौद्र ध्यान का अर्थ भयानक। इस ध्यान के अन्तर्गत क्रुरता का चिन्तन होता है। विषय भागों में आसक्त व्यक्ति को अच्छे बुरे का भान नहीं रहता है, उसके चिंतन में व्यवहार में जड़ता, कठोरता, क्रुरता आदि आ जाती है। हिंसा करने, झूठ बोलने, वस्तु हरण व अधीन करने की प्रवृति पायी जाती है। ऐसा व्यक्ति वेदनाशून्य, करूणाशून्य या सहानुभूति शून्य होता है।

रौद्र ध्यान के प्रकार :इसके 4 प्रकार बताये गए है।

1. हिंसानुबंधी 2. मृषानुबंधी 3. स्तेनानुबंधी 4. सरंक्षानुबंधी

1. हिंसानुबंधी : हिसाजनक कार्यो को मन, वचन और काय से करना, करवाना और अनुमोदन करना ही हिंसानुबंधी रौद्र ध्यान है। इसके अन्तर्गत जब व्यक्ति क्रोध के वशीभूत हो जाता है, तो उसका हृदय निर्दयी व क्रुर हो जाता है, फलस्वरूप व्यक्ति,वेधन, बंधन, दहन अंकन (शलाका), मारण का या तो संकल्प करता है, या कार्यो को न करते हुए भी उनका विचार होता है।

2. मृषानुबंधीः मृषा का तात्पर्य झुठ है। इस ध्यान में व्यक्ति असत्य भाषणों मे चित की एकाग्रता होती है । वाणी की चतुराई से असत्य भाषण करके दूसरों को मोहित कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करना, झूठी प्रशंसा कर गलत को सही बताकर उसके मूल्य को अधिक लेना, सत्य को असत्य व असत्य को सत्य सिद्ध करना आदि मृषानुबंधी रौद्र ध्यान के अन्तर्गत आता है । झुठ का सहारा लेकर स्वयं की स्वार्थ पूर्ति करना या ऐसे विचारों मे चित एकाग्र होना मृषानुबंधी रौद्र ध्यान है ।

3. स्तेनानुबंधी रौद्र ध्यान – स्तेय का अर्थ चोरी है इसमें चित में सदैव चोरी करने की एकाग्रता बनी रहती है । ऐस चोरी करने की सदा चिंता करना, चोरी करके अति हर्ष मनाना दूसरों से चोरी करवाना, चोरी के गुर बताने वाले की प्रशंसा करना स्तेय रौद्र ध्यान है ।

4. संरक्षानुबंधी रौद्र ध्यान – इसमें परिग्रह के अर्जन और उसके संरक्षण संबंधी चित की एकाग्रता होती है । अपनी अर्जन की हुई वस्तु के खो जाने के भय, नष्ट हो जाने के भय, साथ ही उसके संरक्षण की चिंता व भयभीत रहना विषय संरक्षण रौद्र ध्यान है । इससे वह बंधन युक्त व कषाय युक्त होता है । अतः ऐसा व्यक्ति वास्तव में सुखी व प्रसन्न नही रह सकता है ।

लक्षण (रौद्र ध्यान) :

अवसन्न दोष – रौद्रध्यानी विषय योगो कामनाओं, वासनाओं, राग–द्वेषादि दोषों में खिन्न तो रहता ही है । साथ ही उसे दूसरों को देखकर भी खिन्नता होती है ।

बहुल दोष – ऐसे व्यक्ति में हिंसा, चोरी, झूठ आदि दोषों की बहुलता आ जाती है ।

अज्ञान दोष – अज्ञान ही दुःखों का कारण है सब दुःखों का मूल है । रौद्र ध्यानी अज्ञानता वश हिंसा, झूठ, चोरी आदि दुष्प्रवृतियों को ही अपने सुख हेतु मानते है ।

आमरणान्त दोष – रौद्र ध्यानी की बुद्धि हिंसा आदि दुष्कर्मो या दुष्प्रवृतियों में होती है । अतः वह उन्हे जीवन प्रर्यन्त बनाये रखना चाहता है ।

3. धर्मध्यानः

धर्म विषयक चिंतन ही धर्मध्यान है। वत्थु सहावो धम्मो अर्थात वस्तु का स्वभाव धर्म है। जो गुण पदार्थ में दुसरे के निमित्र से उत्पन्न हुआ हो वह विभाव कहलाता है जैसे जल की शीतलता उसका धर्म है,उष्णता उसका विभाव है क्योंकि वह अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुआ है।

इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव निर्विकारता, शुद्धता, मुक्तता, चिन्मयता, अजरता, अमरता, सत्यता, ज्ञान सुख आदि है। इनकी प्राप्ति में दूसरे की आवश्यकता या अपेक्षा होने के कारण ये आत्मा के धर्म है। इसके विपरीत मिथ्यात्व, कषाय, हिंसा, चोरी आदि सब विभाव है, अतः विभाव ही अधर्म है। अधर्म आत्मा के लिए अहितकर, दुखकर पीड़ादायक, क्लेशकर, हेय और त्याज्य है।

इसके विपरीत धर्म आत्मा के लिए हितकर, सुखकर, श्रेयस्कर, आपेक्षीय व स्वीकार्य है। अतः विभाव रूपी अधर्म को दूर करने हेतु स्वभावरूपी धर्म ध्यान की आवश्यकता होती है। अतः कह सकते हैं कि काषायों को दूर करने हेतु निर्जरा का मार्ग या मोक्ष का मार्ग ही धर्म ध्यान है।

धर्म ध्यान के प्रकार :

1. आज्ञा विचय 2. अपाय विचय

3. विपाक विचय 4. संस्थान विचय

1. आज्ञा विचयः– आज्ञा विचय का अर्थ है आज्ञा का विचार या अनुचिंतन करना। जो आज्ञा सर्वहितकारी हो, ऐसी आज्ञा का विचार करना आज्ञा का विचय है। ऐसी हितकारी आज्ञा सामान्य पुरूष की नहीं वरन् अतिसामान्य पुरूष की ही हो सकती है। वह अतिसामान्य पुरूष है, वीतराग महापुरूष यों तो राग– द्वेष दुःख के सबसे बड़े कारण है।

2 अपाय विचयः– अपाय विचय का अर्थ हैं दोषों पर विचार करना। अतः इस ध्यान के

अंतर्गत अपनी अज्ञात पर उस अज्ञानता से होने वाले असम्यक् व्यवहार पर उससे उत्पन हुए दुःख पीड़ा , कष्ट, कलेश लाचारी, आदि पर विचार करना ताकि दुःख मुक्ति हो सके, उपाय विचय ध्यान का ही परिचायक है। यह सत्य है कि

जीवन में सुख – दुःख दोनों का आवागमन चलता रहता है। सुख के प्रति हमारा राग होता है तो दुःख के प्रति द्वेष। कुछ दुःख स्वयं के द्वारा उत्पन्न हुए हु तो कुछ दूसरों के निमित से । ऐसी स्थिति में यदि सम्यक् ज्ञान हो तो विपरीत परिस्थितियों में भी अविचलित रहा जा सकता है अथवा कम विचलित हुआ जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि यदि व्यक्ति भीतर से सुदृढ़ होता है तो बाह्य परिस्थितियों से भी कम प्रभावित रहता है या समभाव में रहता है। यह तभी सम्भव है जब उचित और अनूचित में भेद करने की दृष्टि हो। ऐसा होने पर ही उचित का वरण और अनुचित का त्याग किया जा सकता है।

सामान्य जीवन में भी सुख व सफलता पाने के लिए या सफल प्रबंधन के लिए अपनी शक्तियों, क्षमताओं पर जितना ध्यान दिया जाना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है अपनी कमजोरियों पर भी या अन्य कुप्रभावित करने वाले तत्वों पर भी ध्यान देना। अर्थात सकरात्मक पक्ष के साथ – साथ नकारात्मक पक्ष पर भी ध्यान देना अति आवश्यक है, वरण पूर्णतया सफलता को प्राप्त कर पाना संभव नहीं है। अतः आवश्यक है कि नकारात्मक पक्ष को स्वीकार कर उन्हें दूर करने का प्रयास करना जिससे सुख व सफलता को प्राप्त किया जा सकें। साधना के क्षेत्र में भी यह बात लागू होती है। साधना का मार्ग अक्लेश का मार्ग हैं, सुख का मार्ग हैं, शांति का मार्ग है, आनंद का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले साधक के लिए भी आवश्यक है कि भव बंधन, भव भ्रमण, उनसे हाने वाले दुःखो, कष्टों, तापों, क्लेशों पर विचार करें, चिंतन – मथन करें, उनके उपायों को खोजे तभी दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। जब वह अपने सामने बड़ा लक्ष्य रखेगा तभी वह स्व्यं को भी उस मार्ग के लिए तैयार कर सकेगा। तब वह अपनी शक्तियों का उपयोग करेगा और कुप्रभावित करने वाले तत्वों को दम करने का प्रयास भी करेगा। अतः जब तक हम समस्याओं से स्वयं को मुक्त नहीं करना चाहेंगे तब तक समस्याए यथावत रहेगी और यह भी हो सकता है कि वे बढ़ेंगी ही, घटेंगी नहीं। जैसे ही समस्याओं को दूर करने का प्रयास होगा वैसे ही समाधान भी स्वतः मिलते जाएंगे। अतः आवश्यक है कि दुख मुक्ति के लिए और सुख प्राप्ति के संदर्भ में भली प्रकार चिंतन – मंथन कर उस मार्ग की और प्रस्थान करना। अपाय विचय ध्यान इसमें सहयोगी बनता है।

3. विपाक विचयः– विपाय का अर्थ कि संचित कर्मो का उदय में आना, सचित कर्मो का फल प्राप्त होना। संचति कर्मो के परिणामों पर विचार करना ही विपाक विचय ध्यान है। अर्थात् कर्म फलों से प्राप्त होने वाले दुःखद परिणामों पर विचार करना ताकि ऐसे कर्मो से बचा जा सकें, विपाक विचय ध्यान का परिचायक हैं। ऐसा होने पर उन कर्मो पर रोक लग सकेगी जो वास्तव में क्लेश का कारण बनते है। जैसा कि अग्नि का परिणाम जलना है, विष का परिणाम मरना है, असत्कर्मो का परिणाम पाप है और सत्कर्मो का परिणाम पुन्य है। विचारशील या बुद्धिमान पुरूष इन परिणामों पर चिंतन – मंथन कर असद् परिणामों से बचता है और सद् परिणामों को चुनता है या उस मार्ग पर चलता है। इसी प्रकार कर्म का सिद्धांत जो बहुत ही गूढ़ पहलू है, बहुत बड़ा रहस्य है इनके परिणामों पर विचार कर सत्कर्मों की और प्रवृत्त होना एक साधक के लिए आवश्ययक शर्त है। ऐसा होने पर ही कर्म बंधनों को तोड़ा जा सकता है और दुःखो से मुक्त हुआ जा सकता है।

यह अटूट सत्य है कि जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही परिणाम होता है। आम बोने से आम मिलेगा और बबूल बोने पर बबूल ही मिलेगा। मधु का प्रभाव मधुर है तो कटु का स्वभाव कटु ही है। मधु तो मधु है और नीम भी नीम ही है। दोनों का स्वभाव भिन्न – भिन्न है। किसी विशेष परिस्थिति में औषधीय उपचार के लिए या खाद्य पदार्थ को सुस्वादु का बनाने के लिए यदि नीम की कटुता को कम करना हो तो मधु की सहायता से कम किया जा सकता है। मधु की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, नीम की कटुता की उतनी ही कम होती जायेगीं। इसी प्रकार संचित कर्मो के विपाक को भी कम किया जा सकता है, उन्हें पतला किया जा सकता है, हल्का भी किया जा सकता है, उन्हें अशक्त किया जा सकता है। इस के लिए आवश्यक है कि साधना जितनी गहरी होगीं कर्म बंधन उतने ही क्षीण होते जाऐगें और उनका फल भी उतना दुःखद

नही होगा जितना कि पूर्व में सम्भावना थी। कहने का तात्पर्य कि राग द्वषादि युक्त कर्मो में लिप्त होने से अनेक समस्याओं उत्पन होती है, उन्ही से व्यक्ति आकूल व्याकूल रहता है, दुखी रहता है, संतप्त रहता है और, भव परिभ्रमण करता रहता है। इसके विपरीत जब दुख के परिणामों पर विचार करता है, और राग द्वेषादि युक्त कर्मो से दूर रहने का प्रयास करता है, तप और संयम का आचरण करना है, मन की मलिनताओं को कम करता है, स्वयं को परिकृष्त करता है तो धीरे – धीरे शोधन होता जाता है और बंधन भी क्षीण होते जाते है। इससे दो तरह के परिणाम प्राप्त होते है। एक और संचित कर्म अशक्त बनते है तो दूसरी और कर्म बंधनों से भी बचा जा सकता है। अतः साधना का पथ भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों को परिष्कृत करता है।

संस्थान विचयः– आदि अंत रहित लोक की आकृति पर विचार करना संस्थान विचय ध्यान है। जब लोक संस्थान पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव की दृष्टि से विचार किया जाता है। तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह लोक जीव और अजीव से भरा हुआ है। एक और जीव अंनत काल से अपने – अपने कर्मो के अनुसार फलों को भोग रहें हैं। रोग, शोक, ताप, भय, क्लेश आदि से दुखी जीव क्षणिक सुख का तो आन्नद ले सकता है पर स्थाई सुख का नही। दुसरी और अजीव पदार्थ समय के साथ – साथ परिवर्तित होते रहते है, सड़ते है, गलते हैं, स्वरूप में परिवर्तन होता है। अंतत परिणाम दुःखद ही होता है। अतः लोक की ऐसी व्यवस्था, ऐसी अवस्था, ऐसा स्रूप या ऐसा स्वभाव देखकर ध्याता के मन में क्षणभंगुरता का बोध होता है साथ ही यथार्थ सत्य का बोध भी होता है तब वह लोकातीत, अनंत अखंड, अक्षय, अलौकिक और आंनद के लोक को प्राप्त करने हेतु चितंन करता है। इस चिंतन में वह परम आंनद की उपलब्धि करता हैं।

कहने का तात्पर्य है कि लोक संस्थान पर विचार करने से ही लोक के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है। लौकिक वस्तुओं और पदार्थो के वास्तविक स्वभाव का बोध होता है। साधक को जब मारणशील, गलनशील, सड़नशील, विनाशी वस्तु, पदार्थो का ज्ञान होता है साथ ही आसक्ति होने पर इन से वियोग होने का दुःख भी वह समझने लगता है, जो उसे अतीव आनंद की प्राप्ति करा सकें। तभी लोकसंस्थान विचय ध्यान का प्रारम्भ होता है। लौकिक वस्तुओं या पदार्थो से संबंध विच्छेद होने से साधक आत्मा के अलौकिक सच्चिनानंद धर्म की प्राप्ति करता है और अपने स्वरूप को ऊंचा कर लेता है।

संदर्भ सूचीः

जोशी हेमलताः जे.वी.बी.आई.एम.ऐ.पुर्वार्द्ध) विषयः योग एवं जीवनविज्ञान प्रथम पत्र विभिन्न योग पद्धतियाँ

जैन राजीवः सम्पूर्ण योग विद्या

https://en.wikipedia.org/wiki/Jain_meditation

www.jinvaani.org/dhyaan.html

https://www.speakingtree.in/allslides/jain-meditation

*** Corresponding Author:**
राहुल कुमार एवं रामवतार मीणा
अध्यापक, एम.ए. (योग) छात्र एवं वरिष्ट प्रारूपकार, नगर नियोजन विभाग,जयपुर एम.ए.(योग) छात्र
Emil id: indianrahulkumar@gmail.com, Mob.No. 9929766016